दलित नृत्यांगनाएँ : अपराधीकरण, उत्कंठा और सुधार

नीता कोली

'जाति' और 'लैंगिकता' सामाजिक विभेद की इकाई है, जिन्हें परस्पर पृथक समझा गया है। जाति को धर्मानुमोदित सामाजिक स्तरीकरण की भारतीय इकाई के संदर्भ में देखा जाता है और लैंगिकता को पितृसत्ता के उत्पादन और पुनरुत्पादन के कारक के रूप में समझा गया है।[1] दलितों के क्षेत्रीय इतिहास[2] ख़ासतौर पर औपनिवेशिक महाराष्ट्र[3] पर जो काम है उसमें 'दलित' का अर्थ मुख्य रूप से पुरुष से है और औपनिवेशिक काल में महिलाओं पर जो नारीवादी लेखन[4] है उसके केंद्र में उच्च जातीय मध्यमवर्गीय महिलाएँ हैं। यह लेखन मुख्यतः समाज सुधार पर है, जोकि उच्च जातीय मध्यमवर्गीय महिला के मुद्दों से जुड़े थे। स्वयं चारु गुप्ता जिन्होंने जाति और लैंगिकता के अध्ययन[5] में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है अपने आरंभिक कार्य[6] में इन मुद्दों पर बात नहीं करती हैं। अपने इस शोध निबंध में, मैं उपरोक्त पूर्वाग्रहों से हटकर जाति और लैंगिकता के संबंधों को उजागर करने का प्रयास करूँगी। जातीय व परंपरागत तौर पर नृत्य संगीत करने वाली स्त्रियाँ जिज्ञासा और अकादमिक हस्तक्षेप का विषय बनी हुई हैं। इसका एक कारण इनका परंपरागत स्त्री की भूमिका से भिन्नता तथा इनकी यौनता है। इस संदर्भ में शर्मीला रेगे का काम महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह न केवल लावणी और कोलाहाटी महिलाओं के इतिहास को समझने में मदद करता है बल्कि जाति और लैंगिकता के परस्पर संबंधों को समझने में भी लाभदायक है। रेगे अपने कार्य में लावणी महिलाओं को दास बनाने से लेकर उनकी यौनिकता को लगातार मर्दवादी विचारधारा द्वारा नियंत्रित किए जाने की प्रक्रिया की बात करती हैं।[7]

---

1 अनुपमा राय (2012) : 239.

2 देखें, शेखर बंद्योपाध्याय (1997); सौरभ दुबे (1998); मार्क जुएर्गेन्समेयर (2009).

3 देखें, रोज़लिंड ओ (1985); गेल ऑम्वेट (1994).

4 देखें, एम. स्वप्न बनर्जी (2004) (सं.), कुमकुम संगारी और सुदेश वैद (1989); तनिका सरकार (2001); एच. गेरल्डिन फ़ोर्ब्स (1996).

5 देखें, चारु गुप्ता (2016).

6 देखें, चारु गुप्ता (2001).

7 शर्मिला रेगे (1995) : 23-38.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 284

अंजलि अरुंदेकर देवदासी अस्मिता को 'समरूप' समझे जाने की प्रक्रिया को दर्शाती हैं। वह गोवा और महाराष्ट्र के गोमंतक मराठा समाज का अध्ययन करती हैं और यह तर्क पेश करती हैं कि देवदासी समुदाय और इसका इतिहास बहुस्तरीय है। वह देवदासी समाज को एक समरूप समाज के रूप में देखने को 'मिथ्या एकता' की संज्ञा देती हैं। अंजलि कहती हैं कि देवदासियों को ब्राहमणवादी निरंकुशतावाद के अंतर्गत रख कर इन्हें जाति और श्रम के आयाम में ही बाँध दिया गया। उन्होंने इस विषय के 'सांस्कृतिक संग्रह' बनाम 'सामाजिक बुराई' पर आधारित विमर्श को भी खोलने का प्रयास किया है।[8]

प्रियदर्शिनी विजयश्री धार्मिक वेश्याओं के मंदिरेतर रूपों का उद्घाटन करती हैं। इनमें जाति, आनुष्ठानिक भूमिका, पारिश्रमिक आदि के स्तर पर भारी विषमताएँ हैं। वह कहती हैं इससे पितृसत्तात्मक जाति व्यवस्था के भीतर विद्यमान वैकल्पिक 'स्थल' की संरचना का खुलासा होता है। इसके साथ ही, उन पेंचों को समझने का अवसर भी उत्पन्न होता है जिनके तहत जाति सभी मानवीय संबंधों के बीच कार्यरत है।[9] देवेश सोनेजी तमिलनाडु में देवदासी प्रथा का ख़ासतौर पर उनकी नृत्यकला के संदर्भ में अध्ययन करते हैं। वह कहते हैं सुधारक देवदासियों की जीवनशैली का उनकी अवैवाहिक यौनिकता के आधार पर अपराधीकरण कर रहे थे और उनके उन्मूलन के लिए एकजुट थे। सुधारक उनकी सामाजिक वास्तविकताओं पर ध्यान नहीं दे रहे थे, जो उनका हाशियाकरण करता है।[10]

अनुजा अग्रवाल बेड़िया समुदाय का अध्ययन करती हैं, जोकि आमतौर पर आर्थिक रूप से स्त्री की वेश्यावृत्ति पर निर्भर था। अनुजा कहती हैं उनका यह अध्ययन वेश्यावृत्ति से ज़्यादा उस आचार/व्यवहार पर है, जिसमें 'सामान्य समाज' के संस्थान और व्यवहार एक विशेष समूह के लोगों के बीच वेश्यावृत्ति के प्रचलन को उत्पादित, पुनरुत्पादित कर रहे थे तथा आकार दे रहे थे। अनुजा बेड़िया स्त्री की वेश्यावृत्ति को ख़ासतौर पर स्त्री के श्रम और पारिवारिक संबंधों के संदर्भ में देखती हैं। वह पितृसत्ता के मुद्दे पर ख़ास ध्यान देती हैं।[11] एंड्रू आल्टर गढ़वाल में ढोलवादन की बात करते हैं जोकि गढ़वाल में संगीतकार जातियाँ बजाती हैं। वह बाजगी, दास, औजी, ढोली, हुड़किया जातियों की, उनके ढोलवादन के पेशे के संदर्भ में बात करते हैं। लेकिन एंड्रू की दिलचस्पी इन जातियों के विषय में बात करना नहीं बल्कि गढ़वाल में ढोलवादन के ज्ञान की प्रकृति की पड़ताल करना है। वह ख़ासतौर पर ढोल के इतिहास, ज्ञान और प्रचलन के ग्रंथ *ढोल सागर* का अध्ययन करते हैं।[12] वसुधा पांडे ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में कुमाऊँनी संस्कृति के 'उच्च' और 'निम्न' में निर्धारण के संदर्भ में कहती हैं कि दास, ढोली और दमाई को हाशिए पर लाने में आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग की

---

[8] अंजली अरुन्देकर (2012), (सं.) एनिया लूम्बा और रिटी ए. लुकोज़ : 244-263.

[9] प्रियदर्शिनी विजयश्री (2010) : 173.

[10] देखें, देवेश सोनेजी (2012).

[11] अनुजा अग्रवाल (2008) : 7.

[12] ऐंड्रू ऑल्टर (2003) : 63-76.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 285

महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इन्होंने लोक प्रस्तुतियों पर प्रहार किया जिन्हें घटिया और अभद्र समझा गया। इस वर्ग ने संस्कृत के प्रयोग को प्रोत्साहित किया तथा स्थानीय परंपराओं का अवमूल्यन किया।[13]

मैं जिन नृत्यांगनाओं की बात करने जा रही हूँ वह उत्तराखंड के हिंदू वर्ण व्यवस्था के चौथे पायदान डोम वर्ण से हैं। डोम में भी ये जातियाँ चौथे स्थान पर आती है कोल्टा, ढाकि, कुमरिया, बेड़ा, बादी, हुड़किया, बाजगी, ढोली आदि ऐसी जातियाँ थीं जो जातीय व परंपरागत तौर पर नाचने व गाने का कार्य कर रही थीं। अन्य डोम जातियों के साथ इन्हें सामूहिक रूप से हरिजन[14] व शिल्पकार[15] भी कहा जाता है। एटकिंसन ने इन्हें पेशेवर भिखारी और घुमक्कड़ संगीतकार बताया है। बादी गाँव के संगीतकार थे जो विभिन्न वाद्ययंत्र बजाते थे और उत्सवों पर गाते थे। वह गाँव-गाँव, घर-घर माँगने के लिए जाते थे। एटकिंसन कहते हैं कि बादी जिसकी अपेक्षा करते थे यदि उन्हें नहीं मिलता था तो वह उस घर के लोगों की निंदा करते थे, अपशब्द बोलते थे। इस प्रकार वह कुछ हद तक स्वयं को बनाए रखने में समर्थ थे। हुड़किया अपने छोटे से वाद्य यंत्र, 'हुड़का' जिसे वह अपने साथ रखते थे, के कारण हुड़किया कहलाए। वह कृषि नहीं करते थे, अपनी स्त्रियों के साथ घूमते थे जो गाती और नाचती थी। इसी गजेटियर के दूसरे भाग में कुमाऊँ के संदर्भ में एटकिंसन कहते हैं कि हुड़किया स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति भी करती थीं। ढोली 'ढोलक' बजाने के कारण ढोली कहलाए। ढोलक आत्मा को किसी व्यक्ति में प्रवेश करने या व्यक्ति से बाहर आने के लिए बजाया जाता था। इसकी एवज़ में ढोली को पैसा मिलता था।[16] बाजगी ढोल बजाते थे, बेड़ा संगीतकार थे, ढाकी नर्तक थे और कोल्टा जातीय तौर पर हल चलाने वाले थे।[17] हालाँकि यह दलित जातियाँ उत्तराखंड में सभी स्थानों पर हैं, किंतु मैं यहाँ पर टिहरी गढ़वाल रियासत के विशेष संदर्भ में बात करूँगी।

इन नृत्यांगनाओं को विवाह, बच्चे के जन्मोत्सव, अतिथियों के मनोरंजन आदि पर बुलाया जाता था। कुछ बड़े सामंत व राजा स्वयं का हुड़किया परिवार रखते थे, जो पैतृक संपत्ति के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता था।[18] ये नृत्यांगनाएँ होली व जश्न के समय में दरबार में नृत्य संगीत प्रस्तुत करती थीं। गाने-बजाने का प्रशिक्षण बचपन से ही शुरू हो जाता था। ये नृत्यांगनाएँ 10-12 साल की उम्र से ही दरबार में तथा अन्य स्थानों में प्रस्तुतियाँ देने लगती थीं। लड़कियों को छोटी उम्र में ही गाने बजाने के प्रशिक्षण के लिए पेशेवर नृत्यांगनाओं, जो कि आमतौर पर उनकी रिश्तेदार हुआ करती थीं, के पास छोड़ दिया जाता था। एडविन टी एटकिंसन अपनी

[13] वसुधा पांडे (2014) : 8.

[14] गाँधी जी ने 1930 से दलितों को हरिजन कहना शुरू किया, जिसका अर्थ है ईश्वर की संतान.

[15] लाला लाजपत राय ने उत्तराखंड के दलित जिन्हें डोम कहा जाता था को, 1913 में उनके शिल्प कार्यों के कारण शिल्पकार नाम दिया.

[16] एडविन टी. एटकिंसन (2002, 1881) वॉल्यूम 3, पार्ट-1 : 279.

[17] बनारसी दास, उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिम्स गज़ेटियर टिहरी गढ़वाल : 45.

[18] मनमोहन शर्मा (1977) : 40.

किताब *हिमालयन डिस्ट्रिक्ट ऑफ़ नॉर्थ वेस्ट प्रोविन्स* में लिखते हैं कि हुड़किया लड़कियाँ वेश्यावृत्ति करती थीं तथा ब्रिटिश सैनिक उनके पास आते थे।[19]

1904 में तिब्बत में यंग हसबैंड अभियान[20] के बाद उत्तराखंड तथा तिब्बत के मध्य व्यापार को बढ़ावा मिला। ग्रीष्म ऋतु में काफ़िले यहाँ से गुज़रते थे। ये हुड़किया स्त्रियों के लिए बहार के दिन थे। इनका मुख्य कार्य धनी भोटियाओं का मनोरंजन करना था। कुछ भोटिया स्वयं का हुड़किया परिवार रखते थे और उनकी सेवाओं पर प्राथमिक अधिकार रखते थे।[21] स्त्रियाँ प्रातः व्यापारियों के मार्च से पूर्व तथा संध्या में विराम के बाद नृत्य करती थीं। वह अपने स्वामी को प्रातः मार्ग तक विदा करती थी तथा लौटने पर उनका स्वागत करती थी। प्रतिष्ठित व्यक्ति के विदाई समारोह के दौरान हुड़किया स्त्रियाँ जुलूस यात्रा में लगातार नृत्य करती थीं तथा व्यक्ति को गाँव के बाहर तक विदा करती थीं।[22] व्यापारिक ऋतु के पश्चात् भी नृत्य संगीत जारी रहता था। गीत पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से हस्तांतरित होते थे। कई प्रकार के गीत गाए जाते थे गीतों की विषयवस्तु राजा राजकुमारों की प्रशंसा से लेकर लोकदेवताओं के भजन, प्रेमियों के गाथागीत, मालू साही और राजुला तथा भूदृश्यों के प्रेरणादायक विवरण होते थे।[23]

20वीं सदी में ही कोल्टा, बाजगी, ढाकी, बेड़ा, हुड़किया आदि दलित जातियाँ, जो परंपरागत व जातीय तौर पर नृत्यांगनाएँ थीं यौनकर्म के लिए शहरों की ओर उन्मुख होने लगी तथा सहारनपुर, देहरादून, दिल्ली, अमृतसर, लाहौर, करांची इनके आकर्षण केंद्र थे। देहरादून में बाबूगंज और मोती बाज़ार प्रसिद्ध वेश्यालय थे।[24] जिससे इनकी यौनिकता पर विमर्श उपजा और राज्य तथा सिविल सोसाइटी में उत्कंठा ने जन्म लिया। आख़िर क्यों ये विशिष्ट जाति की स्त्रियाँ यौन कर्म के लिए पहाड़ी क्षेत्र से मैदानों की ओर, गाँव से शहरों की ओर जा रही थीं? विषय की बोधगम्यता के लिए इस बात की तफ़तीश आवश्यक है।

भौगोलिक, सामाजिक व आर्थिक स्थिति

ये नृत्यांगनाएँ मुख्यतः रंवाई जौनपुर क्षेत्र से थीं। रंवाई का क्षेत्र उत्तरकाशी ज़िले के पुरौला तथा राजगढ़ी खंड़ों में स्थित हैं। जौनपुर टिहरी गढ़वाल ज़िले का भाग है। यह समस्त क्षेत्र हिमालय पर्वतमाला क्षेत्र में स्थित है तथा जौनसार बावर की अपेक्षा कहीं अधिक ठंडा है। इसका अधिकांश भाग सर्दियों में बर्फ़ में दबा रहता है और अधिकांश गाँव नदी घाटियों में

[19] मनमोहन शर्मा (1977) : 40.

[20] 1904 में ब्रिटिश सरकार ने दलाई लामा पर दबाव डालने के लिए कि वह ब्रिटिश भारत के साथ व्यापारिक संबंध बनाए तिब्बत में सेना भेजी. यह सैन्य आक्रमण मध्य एशिया में रूस के प्रभाव के भय की वजह से भी था.इस सैन्य अभियान का प्रमुख फ्रांसिस यंगहसबैंड था.

[21] मनमोहन शर्मा (1977) : 40.

[22] वही : 41.

[23] वही.

[24] फ़ाइल एम, बॉक्स 22, केस न. 4 उत्तराखंड स्टेट आर्काइव, देहरादून.

बसे थे। इस समस्त क्षेत्र में जहाँ कहीं संभव हो खेती व्यापक रूप से की जाती थी। पर्वत खंडों को काटकर सीढ़ीनुमा खेत बनाए जाते थे। इसमें कुछ की चौड़ाई कभी-कभी सहारा देने वाली दीवारों, जो साधारणतः चार से दस फ़ीट तक होती है, से भी कम होती थी। इन खेतों को बनाने में पर्याप्त श्रम, समय तथा धन लगता है। पहाड़ी किसान अपने श्रम व खाद से निरंतर इन खेतों में सुधार करता रहता है। सीढ़ीनुमा खेतों के अतिरिक्त नदी घाटियों में स्थित समतल भूमि पर खेती की जाती थी। ऐसी भूमि को सिंचाई की सुविधा प्राप्त थी। मिट्टी की संरचना की दृष्टि से यह भूमि अत्यंत उच्च कोटि की होती है।[25]

ऐसी कठोर भौगोलिक परिस्थितियों में जीविकोपार्जन के साधन बहुत सीमित थे और जो कुछ उपलब्ध भी थे, उन पर 'उच्च जातियों' का एकाधिकार था। गाँव व खेत पंचायतों, पंचायती अदालतों, नौकरी व नीचे की सेवाओं में सभी जगह 'उच्च जातियों' का एकाधिकार था। कुंताराम जिस के ख़िलाफ़ 1949 में अपनी पत्नी से यौनकर्म करवाने का मुक़दमा चल रहा था, सेक्रेटरी टिहरी गढ़वाल को अपनी भूमिहीनता और ऋणग्रस्तता को ज़ाहिर करता है :

> मैं कुंताराम बेटा जमनू मौजा देबडूगा पेटी रामसेराई रंवाई वाला निवेदन करता हूँ कि फ़िदवी का बाप दादा मौजा देबडूगा में रहते थे जिनकी ज़िंदगी ठाकुरों का काम करते-करते गुज़री ग़रीबी के रुपये के बावत लेकिन रुपया फिर भी अदा न हो सका दादा तो गुज़र चुके थे परंतु फिर मेरे पिता जमनू ने उनकी बागडोर सम्भाली यानी उन्हीं रुपया पर फिर मेरे पिता ने काम करा परंतु जब वो भी काम करते-करते आधी आयु हो गई तब उन्होंने एक दिन सोचा कि इस गाँव से कहीं जाए जहाँ पेट भर रोटी तो खा सके। यहाँ तो दिनभर काम करने पर भी रोटी नसीब नहीं हो सकती। उस का कारण यह था कि कमाने वाले तो पिता जी और माता जी थीं और पीछे खाने वाले चार बच्चे एक भांजा और दूसरी बात यह थी कि अपनी ज़मीन भी नहीं थी। पिता जी ग़रीबी में काम करता था और माता जी इसलिए काम करती थी कि शायद मेरे बच्चों के लिए थोड़ा बहुत ख़ाना दे देंगे। इस प्रकार दिन काट-काट कर गुज़ारा किया करते थे। लेकिन जब हर हालत से तंग आ गए तब लाचार हो कर एक रात को अपने बच्चे और भाँजा समेत भाग निकले, भागने को तो भाग आए पर जाना कहा था यह उन्हें नहीं पता था।[26]

कुंताराम का विवरण बताता है कि कैसे दादा के द्वारा लिए गए ऋण पर उसके पिता बँधुआ काम कर रहे थे तथा माँ भी बिना मज़दूरी के सिर्फ़ भोजन की उम्मीद में काम कर रही थी। ऋणग्रस्तता इस समस्त क्षेत्र के कोल्टा हरिजनों की मुख्य समस्या तथा आर्थिक दासता का प्रधान कारण थी। ऋण देते समय साहूकार सवा छह प्रतिशत गाँठ खुलाई पहले ही ले लेता था और ब्याज़ पच्चीस प्रतिशत लेता था।[27] कोल्टा समिति की जाँच[28] में पाया गया कि कई

---

[25] कोल्टा जाँच समिति, 1956-60 का प्रतिवेदन (1969) : 3-12.

[26] फ़ाइल एम, बॉक्स 22, केस न. 4 उत्तराखंड स्टेट आर्काइव, देहरादून.

[27] एच. जी. वॉल्टन (1994, 1910) : 75.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 288

जगह ब्याज़ 75 प्रतिशत तक लिया जाता था। जीविका उपार्जन तथा आय के अन्य साधनों के सर्वथा अभाव में कोल्टा व अन्य हरिजन कभी ब्याज़ व कभी मूल नहीं दे पाते थे। और स्वयं अपनी आगामी पीढ़ी को साहूकार के पास बंधक रख देते थे।[29]

एच. जी. वाल्टन डोम द्वारा दिए जाने वाले बेगार की बात करते हैं। वह कहते हैं कि गढ़वाल की सामाजिक व्यवस्था का मुखिया थोकदार था, जोकि इंग्लिश सामंती व्यवस्था की याद दिलाता है। इसके बाद प्रधान, हिस्सेदार और अंतिम चरम में डोम था। मोरले स्मिथ 1836 के अपने लेखन *स्लेवरी इन कुमाऊँ* में डोम को हाली कहते हैं। वास्तव में ब्राह्मण और अन्य जिन्हें प्रथागत तौर पर खेतों पर व्यक्तिगत श्रम से बाहर रखा गया था, वे हाली लोगों से खेतों में श्रम लेते थे। यह उसी प्रकार था जैसे पशुओं को खेतों में जोता जाता है। ज़मींदार उसे किसी तीसरे व्यक्ति को हस्तांतरित या बेच भी सकता था। वाल्टन कहते हैं कि 1910 में डोम को किसी एक व्यक्ति या भूमि से बाँधा नहीं गया था। लेकिन दास प्रथा अब भी अस्तित्व में थी।[30] कुंताराम का निम्नलिखित विवरण साहूकार के शोषण और दमनकारी जाल को समझने में मदद करता है :

> मेरी बूढ़ी माता ने चिट्ठी भेजी की बेटा तुम एकदम घर चले आवो नहीं तो जो हमारे रहने की झोपड़ी है और बर्तन है वह भी जाते रहेंगे। इस ख़बर के बाद माता जी ने अपने हाथ राजगडी की तारिक खेलती रही। इधर मैं बीमार पड़ गया और घर जाता भी कैसे जाता जब की मेरे ऊपर इस समय कम से कम 1500 रुपये घर पर क़र्ज़ा है। इसमें से मैं या मेरे पिता ने क़रीबन 229 रुपये नक़द लिया होगा और सब ब्याज़ के और खाने के हुए है और बातर पर लिया अगर छः माह तक बातर या मूल न दिया गया तो बातर की बातर देनी पड़ती और मूल की बातर तो देनी ही है इस तरह से देने को अनाज तो हुआ नहीं फिर एक साल दो साल साहूकारों ने तमसुख बना लिया फिर जो भाव दुकान पर हुआ उस हिसाब से जोड कर रुपये बना लिया और हम उस समय यह बोलते है कि तुम्हारी कुडी कुल 10 या 12 छटाक की है या तुम छः महीने पहले का भाव जोड़ना तब कहते हैं की हमे तमसुख नहीं चाहिए हमारा अनाज लाओ चाहे कही से भी लाओ लेकिन हम अनाज कहा से ला सकते है जब खाने के लिए मोल खाते थे तो उन्हें कहा से देते फिर उन की खुशामद कर के तमसुख लिखते थे यह बात बहुत दिन की नहीं बल्कि यहा तक हमारा ऐसा ही हिसाब चल रहा है। इस की बजाय मैं आप को पहले पेज पर लिख चूका हूँ जो कुछ हो रहा और होगा यह सब ज़मीन न होने की वजह से हो रहा है। और ऐसा क्या हमारे हाथ पैर थोड़े टूट रहे थे।[31]

---

[28] देहरादून ज़िले के जौनसार बावर क्षेत्र के निवासी कोल्टाओं तथा अन्य पिछड़े समुदायों और टिहरी गढ़वाल ज़िले के रंवाई-जौनपुर क्षेत्र के हरिजनों की दशा की जाँच के संबंध में निर्मित कोल्टा जाँच समिति का गठन फ़रवरी 1959 में हुआ। उत्तरप्रदेश के उपमंत्री श्री बलदेव सिंह आर्य समिति के सभापति थे.

[29] कोल्टा जाँच समिति, 1956-60 का प्रतिवेदन (1969) : 26.

[30] एच.जी. वॉल्टन (1994, 1910) : 66-67; बद्रीदत्त पांडे (1990) : 620.

[31] फ़ाइल एम, बॉक्स 22, केस न. 4 यू.ए.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 289

कुंताराम अपनी ग़रीबी और लाचारी के लिए भूमिहीनता को ही कारण मानता है। किंतु इस क्षेत्र में दलित समुदाय की इस स्थिति के पीछे एक पूरा तंत्र काम कर रहा था। बहुत ही नियोजित ढंग से उनके अंतःकरण में क़ब्ज़ा करके उन्हें सभी अधिकारों से वंचित किया गया था। जब विजेता आर्यों अथवा दूसरी शक्तिशाली जाति ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया तो उन्होंने कोल्टा हरिजन को पराजित कर अपना दास बना लिया और और उन्हें सम्पत्ति के समस्त साधनों से च्युत कर दिया। कालान्तर में दासता को विजेताओं ने सामाजिक सांस्कृतिक रूप प्रदान कर दिया। विजेता और विजित को पृथक करने के लिए पराजित लोगों पर अनेक प्रकार की अयोग्यता लाद दी गई। इन अयोग्यताओं के अनुसार कोल्टा हरिजन भूमि के मालिक नहीं हो सकते थे, 'उच्च जातियों' की उपस्थिति में घोड़े की सवारी नहीं कर सकते और जूता नहीं पहन सकते थे, सड़क छोड़ कर चलते थे और कोल्टा हरिजन महिलाओं के लिए स्वर्ण पहनना वर्जित था। इसके अतिरिक्त इनका मंदिर में प्रवेश भी वर्जित था। स्थापित स्वार्थों की रक्षा करने तथा कोल्टा हरिजनों को कभी न उठने देने के लिए यह भी विश्वास प्रचारित किया गया कि कोल्टा, हरिजनों को 'उच्च जातियों' की बराबरी नहीं करनी चाहिए अन्यथा उन का नाश हो जाएगा।[32]

धार्मिक विश्वास, 'उच्च जातियों' का भय, अंधविश्वास के कारण कोल्टा व अन्य दलित अत्यधिक सूद पर लिए गए ऋण की अदायगी कभी अस्वीकार नहीं करते। कोल्टा हरिजनों में विश्वास प्रचलित था कि एक बार सूर्य और चन्द्रमा ने ऋण लेकर देने से इंकार कर दिया था जिसका फल उन्हें अब तक ग्रहण के रूप में भोगना पड़ता है।[33] इस तरह, विचारधारा या धारणा के स्तर पर जाति व्यवस्था असमान भौतिक संबंधों को आचार-व्यवहार और रुतबे के पदों में प्रस्तुत करने की ज़रूरत के प्रति सचेत रही है ताकि समाज के एक हिस्से का पीढ़ी-दर-पीढ़ी शोषण होता रहे और उसे वैधता भी मिलती रहे। यह युक्ति दासप्रथा वाली व्यवस्था में प्रयोग की जाने वाली दमनात्मक युक्ति से जुदा और ज़्यादा प्रभावी है।[34]

क्षेत्र में कन्या मूल्य की प्रथा थी। विवाह के लिए सभी हरिजन ऊँची ब्याज़ की दरों पर साहूकार से ऋण लेते थे। इस ऋण के कारण गृहस्थ में प्रवेश करने वाला व्यक्ति साहूकार की दासता तथा गृहस्थ धर्म का उत्तरदायित्व साथ-साथ ग्रहण करता था। हरिजनों की भूमिहीनता, ऋण ग्रस्तता के अतिरिक्त क्षेत्र के प्राचीन कुटीर उद्योगों के ह्रास का भी इन लोगों पर अत्यंत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इन क्षेत्रों में पहले सूती, ऊनी कपड़ा बुनने, तेल निकालने, लोहे के बर्तन बनाने आदि के काम में अनेक कोल्टा हरिजन लगे रहते थे और इन कार्यों से अपनी जीविका अर्जन करते थे। मीलों की स्थापना से सूती कपड़ा बुनने तथा तेल निकालने का व्यवसाय लगभग समाप्त हो गया। क्षेत्र का समस्त व्यापार मैदानी इलाक़े के लोगों के अधिकार में था। वन सम्पत्ति के विदोहन एकाधिकार अधिकांशतः मैदानी क्षेत्र से आने वाले ठेकेदारों

[32] कोल्टा जाँच समिति, 1956-60 का प्रतिवेदन (1969) : 26.

[33] वही.

[34] उमा चक्रवर्ती (2011) : 24.

के हाथों में था जो बाहर के ही प्रशिक्षित कर्मचारी चिरान, कटान, बहान लाना पसंद करते थे। इस क्षेत्र में आर्थिक दृष्टिकोण से लाभदायक कोई खनिज पदार्थ भी नहीं था।[35]

कोल्टा जाँच समिति के अनुसार समिति के सम्मुख कई स्थानों पर यह कहा गया कि साहूकार तथा कुछ स्थानों पर सयाने व अन्य तथाकथित प्रतिष्ठित पुरुष आर्थिक लाभ के लिए हरिजनों को अपनी महिलाओं व लड़कियों को वेश्यावृत्ति में लगाये जाने को उत्साहित करते थे, तथा इस कार्य के लिए ऋण भी प्रदान करते थे। इस प्रकार इन लोगों की ऋण ग्रस्तता वेश्यावृत्ति को जन्म दे रही थी।[36] कोल्टा जाँच समिति के उपरोक्त कथन को रंवाई निवासियों का 10 जून, 1948 का पत्र पुख़्ता करता है :

> श्रीमान् मंत्री जी
> महोदय
> सेवा में नम्र निवेदन है के इलाक़ा रंवाई जौनपुर से जो लड़कियाँ नीचे देश में जाकर व्यभिचार कर रही है वे अब ऊपर आना चाहती है। परंतु सरकार के कानूनों के डर से ऊपर नहीं आ रही है इसलिए इनके लिए 5 महीने तक इनको रियासत में आने की खुली आज्ञा प्रदान कि जाय।[37]
> प्रार्थना पर ग़ौर हो ये लड़कियाँ शिल्पकार लोगों की है क्योंकि उनके पास अपनी आजीविका का कोई साधन न होने से ऐसा कर्म करती है। दूसरा शामंत शाही के...की चाल बाजे है उनकी माफिक से भी ये लड़कियाँ दीगर देश जाकर व्यभिचार करती है। और कई लोग ऐसे है जो ख़ुद लड़कियों को रुपया देकर आधे हिस्से पर व्यभिचार करवाते है। कितने लड़कियों को शामंतशाही ने हुक्म दिया की तुम दुसरे देश जाकर नाचगान किया करे।[38]

उपरोक्त विवरण दलित नारीवादियों के विचार को मजबूती प्रदान करता है कि दलित स्त्री एक साथ तिहरे शोषण का शिकार होती हैं, दलित होने की वजह से ऊँची जातियों के द्वारा, दूसरा श्रमिकों के रूप में भूपतियों द्वारा और तीसरा, स्त्री के रूप में अपनी ही जाति के पुरुषों द्वारा।[39] उपरोक्त विवरण से जो बातें उभरकर सामने आई हैं उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि भूमिपति इन दलित स्त्रियों का न केवल यौन शोषण कर रहे होंगे बल्कि आर्थिक लाभ के लिए उनकी यौनिकता का प्रयोग भी कर रहे थे। चीफ़ मिनिस्टर टिहरी गढ़वाल को दलित नृत्यांगनाएँ अपने 30 मार्च, 1949 के स्मृतिपत्र (मेमोरियल) में बताती हैं कि वह पेशेवर नृत्य संगीत करती है, तथा यह परंपरा है कि वह इस प्रकार से अपने बच्चों व निर्भरों का पालन-पोषण करें। वह आगे बताती हैं कि टिहरी गढ़वाल में उनका सामाजिक जीवन

[35] कोल्टा जाँच समिति,1956-60 का प्रतिवेदन, लखनऊ: राजकीय मुद्रण एवं लेखन सामग्री, 1969 : 28.

[36] वही.

[37] फ़ाइल एम, बॉक्स 22, केस न. 4 उत्तराखंड स्टेट आर्काइव, देहरादून.

[38] वही.

[39] उमा चक्रवर्ती (2011) : 16.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 291

अस्पृश्यों का है। अतः अन्य कोई पेशा करने का अवसर उन्हें उपलब्ध नहीं है :

> याचिकाकर्ता पेशेवर नर्तकियों और गायकों के एक वर्ग से संबंधित हैं और यह उनके लिए प्रथागत है कि वे अपने बच्चों और आश्रितों को उक्त व्यवसायों से पालते हैं।[40]
> टिहरी गढ़वाल में, प्राचीन काल से उनका सामाजिक जीवन 'अस्पृश्यों' का रहा है और इस अक्षमता के कारण उन्हें किसी अन्य व्यवसाय में नेतृत्व या संलग्न होने की संभावना से दूर कर दिया गया।[41]

कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता के कारण जीविकोपार्जन के सीमित अवसर की उपलब्धता की वजह से भी ये नृत्यांगनाएँ यौन कर्म को अपना रही थी। भारतीय समाज में उच्च जातीय पुरुष के लिए सम्भोग के समय जाति और अस्पृश्यता ढह जाती है।[42] साथ ही वेश्याओं की कोई जातीय अस्मिता नहीं होती।

निगरानी, नियंत्रण और अनुशासन

यह नृत्यांगनाएँ जो जातीय और परंपरागत तौर पर नृत्य संगीत द्वारा जीविकोपार्जन कर रही थीं राज्य द्वारा इनकी जातीय पहचान व परंपरा के आधार पर वेश्यावृत्ति के संदेह पर इन्हें क़ानूनी निगरानी व नियंत्रण में रखा गया था, क्योंकि वेश्यावृत्ति अपराध की श्रेणी में था इसलिए ये महिलाएँ भी अपराधी थीं और इनके साथ इनके अभिभावक (प्रायः पुरुष ही) भी। इन जातियों के व्यवस्थित नियंत्रण की व्यवस्था दरबार सरक्युलर ऑर्डर न. 15 सन् 1928 में की गई। जोकि इन जातियों के जीवन में निर्णायक परिवर्तन लाता है।

इस सरक्युलर के अनुसार ढाकी आदि कुछ जातियों के लोग अपनी स्त्रियों को बाहर देश, देहरादून आदि स्थानों में ले जा कर पेशा कराते हैं इसलिए इसे रोकने के लिए इस सरक्युलर द्वारा कुछ जातियों को नियमों के आबद्ध किया गया। इसमें कहा गया कि ढाकी, कुमरिया, वेड़ा, हुड़किया और ऐसी जाति जिनमें औरतों के नाचने-गाने व पेशा कराने का रिवाज़ है या ऐसी जाति या ख़ानदान जिसको दरबार समय-समय पर औरतों से पेशा कराने वाला मुसाहर करे, अगर अपनी लड़की या स्त्री या अपने कुनबे की किसी भी स्त्री को जो 50 वर्ष से अधिक उम्र की न हो इलाक़े रियासत के बाहर सिवाय ब्रिटिश गढ़वाल के ले जाना चाहे तो उसको पहले इलाक़े के सब डिविज़नल ऑफ़िसर या अन्य कर्मचारी से जिसको दरबार इस काम के लिए नियुक्त करे इजाज़त लेनी होगी। उक्त कर्मचारी यदि इस बात से संतुष्ट हो जाए कि उस लड़की या स्त्री आदि के ले जाने में उस मनुष्य का अभिप्राय उससे पेशा या बदचलनी कराना नहीं हो तो वो किसी ख़ास वक़्त के लिए जो उस मनुष्य को साफ़ तौर पर

[40] फ़ाइल एम, बॉक्स 22, केस न. 4 उत्तराखंड स्टेट आर्काइव, देहरादून.

[41] वही.

[42] अनुपमा राव, (सं.) सुमित सरकार और तनिका सरकार (2014) : 187.

बतलाना होगा उसको बाहर ले जाने की इजाज़त दे देगा और पटवारी को इस की इत्लाह करेगा। अगर निश्चित वक़्त के दरमियान वह व्यक्ति उस स्त्री को लेकर वापस न आए तो पटवारी का फ़र्ज़ होगा कि वह इस की रिपोर्ट सब डिविज़नल ऑफ़िसर के पास करेगा। उस व्यक्ति का उस स्त्री से पेशा बदचलनी कराना साबित होने पर उसको दो वर्ष तक का कारावास या 1000 रुपए तक का अर्थ दंड या दोनों सज़ा दी जाएगी तथा गाँव के प्रधान का भी यह ख़ास काम था कि यदि उपरोक्त जाति में से कोई व्यक्ति अपने घर की स्त्री को बिना इजाज़त परदेश ले जाए तो पटवारी के पास उसकी रिपोर्ट देगा।

यह निगरानी और नियंत्रण का पूरा उपकरण जाति विशिष्ट है। अश्विनी ताम्बे बंबई में वेश्यावृत्ति के संदर्भ में कहती हैं कि कॉन्टैजियस डिजीज़ ऐक्ट नए अर्थों को जन्म दे रहा था। यह उन महिलाओं को भी लक्ष्य बना रहा था, जिन्हें पहले वेश्या के तौर पर वर्गीकृत नहीं किया गया था, जैसे मन्दिर में नाचने वाली स्त्रियाँ। अश्विनी आगे बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कहती हैं – चाहे सरकार का लक्ष्य वेश्यावृत्ति में नियंत्रण लाना ही क्यों न हो, लेकिन क़ानून स्त्री को 'निगरानी' की 'वस्तु' बना रहा था।[43] 3 सितम्बर, 1947 को पुलिस कांस्टेबल उदय सिंह भंडारी द्वारा उन औरतों की सूची पेश की गई जिन्होंने सरक्युलर नम्बर 15 सन् 1928 का उल्लंघन किया था।[44]

ये औरतें अपने मूल स्थान के बजाय टिहरी राज्य से बाहर देहरादून में थी, इसके अतिरिक्त अन्य औरतें सहारनपुर, मुज़फ़्फ़रनगर, दिल्ली, लुधियाना, लाहौर, कराची, अम्बाला में थी जिनकी लिस्ट बनाना बाक़ी था। एक सरकारी मुलाज़िम सब डिविजन ऑफिसर रंवाई को एक मुक़दमे की जानकारी देता है :

> अदालत में तहक़ीक़ात की गई तो मुदायान जमनु और मधु को जुर्म से इंकार है कि उन्होंने मुस्मात केली को इलाक़ा दीगर पेशे में नहीं ले गए। मुदायान जैपालू मुस्मात केली को इलाक़े दिगर ले जाना क़बूल है पर पेशा करवाने से इंकार है और बयान करता है कि इलाज़ के लिए ले गया था इस जुर्म मुलजिमो के ये आमवरियल है और कोई तवजह और वजन इन बयानों पर नहीं दिया जा सकता स.अ.न. 15, 1928 में साफ़ है कि इस क़ौम के लोग अगर कोई अपनी नौजवान औरत को इलाज के लिए इलाक़ा दीगर ले जाए तो उसे हाक़िम इलाक़ा से इजाज़त हासिल करनी ज़रूरी है जोकि जैपालू ने नहीं की लिहाजा उस जुर्म जेर स.अ.न.15 सन् 1928 का करना साबित है और हम उस पर इस जुर्म 300 रुपये जुर्माने की सजा देते है।[45]

सब डिविज़न ऑफ़िसर रंवाई, दलित नृत्यांगना श्यामप्यारी द्वारा डांसर का प्रमाण पत्र

[43] अश्विनी ताम्बे (2009) : 124.

[44] फ़ाइल एम, बॉक्स 22, केस न. 4 उत्तराखंड स्टेट आर्काइव, देहरादून.

[45] वही.

प्रदान करने की दरख़्वास्त पर चीफ़ सेक्रेटरी टिहरी गढ़वाल को दलित नृत्यांगनाओं के संदर्भ में अपने विचार कुछ इस प्रकार व्यक्त करता है :

न.	नाम मुस्मात	नाम वारिशान	पूरी सकूनत	इलाका
1	जानकी	वारिश नही बताया	पजाड़ी सितूर पर्वत	रंवई
2	बिजली	जौ.दिवदास	कोटगाऊँ अढोर	ʼʼ
3	फूलकंवर	जौ.बालादत्त	ʼʼ ʼʼ	ʼʼ
4	मुनी	भाई बालमदास	जखोल पंचगाई	ʼʼ

न.	नाम मुस्मात	नाम वारिशान	पूरी सकूनत	कौम	सर्किल
1	देवकी	बेटी खातू	पुरोला रामसिराई	डोम	राजगढ़ी रंवई
2	शंकरी	बेटी खुमानू	रतगाऊँ रामसिराई	ʼʼ	ʼʼ
3	नकटी	जौ. प्यारु	ʼʼ	ʼʼ	ʼʼ
4	सोवनी	वे. प्यारदास	कुमोला	ʼʼ	ʼʼ
5	सिंघी	जौ. मसरीया	टडूगा रामसिराई	ʼʼ	ʼʼ
6	लछमी	जौ.पतू	खुरमोला रामसिराई	ʼʼ	ʼʼ
7	नागी	वे. शैशू	ʼʼ ʼʼ	ʼʼ	ʼʼ
8	रामप्यारी	जौ.शिताबू	कबखू अढोर	ʼʼ	ʼʼ
9	तारा	वे. फगडू	खुपा अढोर	ʼʼ	ʼʼ
10	मुस्मात नकटी उरफ रामकली	जौ.नकटू	कोटगाऊँ पंचगाई पर्वत	रशाई	ʼʼ
11	बिजली	जौ. बचू	कोटना वनाल	ʼʼ	ʼʼ
12	जमुना	जौ.उदमु	गमोल गाई वनाल	ʼʼ	ʼʼ
13	दुरगीर	वारिश नही बताया	मुराड़ी मुगरसंती	ʼʼ	ʼʼ
14	रामी	जौ. रुशनु	विंगसारी गढूगाड	ʼʼ	ʼʼ
15	तारा	जौ.चंदनु	कजोड़ी पंचगाई	ʼʼ	ʼʼ

इन लोगों का ख़ासकर इलाक़ा ग़ैर में पेशा कराने की ख़्वाहिश रहती है और कराने में जिस

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 294

बाबत इनको इजाज़त नहीं मिलती है इसलिए इस तरह ही ये लोग तवायफ़ के बहाने से सर्टिफ़िकेट हासिल करते हैं और तब पेशा का काम करते हैं ऐसी दरख़्वास्तें इनकी बहाने बाजी ही है।[46]

न.	नाम	नाम वारिशन	पूरी सकूनत	सर्किल
1	गुमानी	जौ.दिलदास	कोटगाऊँ पंचगाई	राजगढ़ी रंवई
2	चंदा	जौ.जशंदु	विन्गसारी गढूगाड	,,
3	1 औरत और नाम मालूम नहीं		,,	,,
4	नाबालिग लड़की	जशंदु के लड़के की औरत	विन्गसारी गढूगाड	
5	पघी	जौ.शिशु	कोटगाऊँ अढोर	,,
6	किड़ी	जौ. रति लुहार	धामपुर रामसिराई	,,
7	देवशी	जौ.बालमदास	जखोल पंचगाई पर्वत	,,
8	अशरफ़ी	बेटी जरबी	कोटी अगोड़ा रामसिराई	,,
9	तारा	जौ. बेलखू	अगोड़ा रामसिराई	राजगढ़ी रंवई
10	जानकी	मुस्मात तारा के लड़के की बहू	,,	,,
11	चंदा उर्फ़ पंचमी	बहेन ठेडीयातु	आराकोट रामसिराई	,,
12	गुलाबी	जौ.रामसिंह मुतवफ़ी	गोंदियात गाऊँ रामसिराई	,,
13	दुरगा	जौ. रती	खाजाड़ी रामसिराई	,,
14	रतनी	जौ. हरी	,, ,,	,,
15	जमुना	बेटी दलपत	खिसबाड़ी पंचगई पर्वत	,,
16	शगरी	वे.फगड़ू	अमोला रामसिराई	,,
17	तारा	जौ. आल्मु	,, ,,	,,

[46] वही.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 295

न.	नाम मुस्मात	नाम वरीशान	पूरी सकूनत	कौम	सर्किल
1	मुस्मात चन्द्रकला	बैन जमनू की	स्यालकू रामसिराई	तमांझा	राजगढ़ी रंवई
2	4 औरते	वारिशो का नाम पता नही	,, ,,	,,	,,
3	पारवती	वारिश का पता नही	टड्डूगा रामसिराई	ढाकी	,,
4	अशरफ़ी उर्फ़ तारा	बेहेन बलू की	,, ,,	,,	,,
5	1 लड़की अशरफ़ी के साथ	,,	,, ,,	,,	,,
6	हिमानी	बेटी दलजीत	सिंदरी अढोर रामसिराई	,,	,,
7	इंदरी	बेटी साधु बालादत	कोटगाऊँ अढोर	,,	,,
8	बिजली	जौ भगता	अगोड़ा रामसिराई	ढाकी	,,
9	अशरफ़ी भगाई हुई	जौजियत में भगता की	,,	,,	,,
10	तारा	जौजा चंदनु	पंचगाई पर्वत खितवाड़ी	,,	,,
11	शीता	जौ.जालमु	,,	,,	,,
12	गोपाली	जौ. रनी मुतवफ़ी	कोटीया रामसिराई	तमांझा	,,
13	जानकी	,,	,,	,,	,,
14	रामकली	वे. रती मुतवफ़ी	,, ,,	,,	,,
15	रामी नाबालिग	,, ,, ,,	,, ,,	,,	,,
16	कीड़ी	जौ. रति	धामपुर रामसिराई	,,	,,
17	जानकी	बेटी रुशनू	कुमोला रामसिराई	,,	,,
18	राधा	जौजा बिजु	वगासु मुगरशन्ति	,,	,,
19	बिजली	वारिश का नाम मालूम नहीं	किश्ना मुगरशन्ति	,,	,,
20	1 औरत		पुरोला रामसिराई	,,	,,
21	पती	जौ. नकटू	कोटगाऊँ पंचगाई	,,	,,

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 296

उपरोक्त बयान और एक विशेष जाति पर ये जो इल्ज़ाम है वह उस वर्चस्वप्राप्त नज़रिए को उन रूढ़ छवियों को दर्शाता है कि वेश्यावृत्ति करना इनका स्वभाव ही नहीं बल्कि शौक़ भी है। अतः ये जातियाँ स्वभाव से ही अपराधी हैं। इसलिए इनके किसी भी बयान पर, दरख़्वास्त पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है तथा इस क़ौम के किसी भी मामले के लिए तर्क व तफ़्तीश की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं है। इन दलित जातियों पर बिना किसी ठोस सबूत के जाँच और क़ानूनी कार्यवाही चल रही थी राज्य से बाहर जाने पर उनके ख़िलाफ़ कार्यवाही की जा रही थी। राज्य द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि इन जातियों की गतिशीलता पर नियंत्रण द्वारा ही इनके द्वारा किए जा रहे अपराध पर विराम लगाया जा सकता है।

राज्य द्वारा दलित महिलाओं को, जोकि राज्य से बाहर थी और 1928 के सरक्युलर को ध्यान में रखते हुए एक निश्चित समय में राज्य में वापिस नहीं आई थीं, उनको राज्य में वापस आने के लिए मोहलत दी गई। टिहरी गढ़वाल रियासत से बाहर जाकर वेश्यावृत्ति कर रही शिल्पकार लड़कियाँ रियासत में वापस आना तो चाहती थीं, लेकिन दरबार सरक्युलर ऑर्डर नम्बर 15 सन् 1928 के उल्लंघन की वजह से मुक़दमें से डरी हुई थीं। 25 अगस्त, 1948 के अपने पत्र में चीफ़ सेक्रेटरी ने इन शिल्पकार लड़कियों को 30 सितम्बर, 1948 तक वापस आने की मोहलत दी। उन्हें यह आश्वासन भी दिया गया कि ऐसा करने पर उनके, उनके वारिसों और रिश्तेदारों के ख़िलाफ़ उक्त सरक्युलर का उल्लंघन करने के लिए कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी। बाद में इसकी अवधि 30 अप्रैल, 1949 तक बढ़ा दी गई।[47] वास्तव में यह मोहलत उन सभी दलित महिलाओं तथा पुरुष जोकि अपनी स्त्री संबंधी के साथ राज्य से बाहर थे, के लिए थी। क्योंकि सरक्युलर ऑर्डर नम्बर 15 सन् 1928 के अधीन सभी दलित आते थे केवल दलित वेश्याएँ नही।

सरक्युलर ऑर्डर नंबर 15 सन् 1928 में साफ़ तौर पर कहा गया था कि टिहरी गढ़वाल राज्य कि दलित जातियों को राज्य से बाहर जाने के लिए संबंधित अधिकारी से अनुमति लेना तथा अनुमति मिलने पर निश्चित अवधि में वापस आना अनिवार्य है। ऐसा न होने पर कठोर कार्यवाही व दंड का प्रावधान था। कुंताराम पर राज्य से बाहर जाने और अपनी बीवी से वेश्यावृत्ति करवाने के संदेह पर अदालत में मुक़दमा चल रहा था, किंतु कुंताराम अदालत में पेश न हो सका। अतः राज्य द्वारा उसकी संपत्ति ज़ब्त कर ली गई। कुंताराम अपनी आप बीती कुछ इस प्रकार बयाँ करता है :

> हम तो ऐसे हैं जैसे खानाबदोश होते हैं लेकिन खानाबदोश तो भी हमारे से लाख दर्जे अच्छे है... न कोई रोक टोक और ना ही उस के घर वालों को कोई मारता है और न कोई रिश्वत

[47] वही.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 297

माँगता है न उसका झोपड़ा कुढ़क होता है... मेरी तो यह मिसाल है कि धोबी का कुत्ता ना घर का ना घाट का अगर घर रहता हूँ तो भी चैन नहीं और बन रहू तो बूढी माँ और छोटे-छोटे भाई-बहन उनकी दसा नहीं देखी जाती। मैंने सुना है कि घर पर आजकल पुलिस बड़ी तंग कर रही है और मारती भी है और रिश्वत भी 40 या 50 रुपये से कम नहीं लेती है... जब मैंने पूछा कि मेरी बाबत अदालत ने क्या करा तब उस ने कहा कि भाई तुम्हारे जो कुछ भाड़े बर्तन थे वे कुड़की में लिख दिए है। बर्तन तो मालगुज़ार प्रलाद सिंग के सुपुर्द कर दिए और मकान की बोली होने वाली है।[48]

राज्य से बाहर जो दलित नृत्यांगनाएँ थीं, उनके लिए भी नृत्य संगीत का प्रमाणपत्र अनिवार्य कर दिया गया। बहुत सी नृत्यांगनाएँ प्रमाणपत्र के लिए प्रार्थना कर रही थीं। श्यामप्यारी जोकि रंवाई की मूलनिवासी है तथा 1947 में बाबूगंज देहरादून में रह रही थीं गाँव के पटवारी द्वारा परेशान किए जाने को व्यक्त करती हैं :

आदरणीय, आपको जान कर ख़ुशी होगी की आपने मुझे देहरादून ज़िले में रह कर नृतक और गायक के तौर पर काम शुरू करने की अनुमति दी है। मैं आप को यह भी बताना चाहती हूँ कि मेरे पिता को गाँव के पटवारी द्वारा परेशान किया जा रहा है।[49]

नृत्यांगना चन्द्रकला जोकि दिल्ली में नृत्य संगीत कर रही थी, तथा रंवाई की रहने वाली है, 1 अप्रैल, 1946 के अपने पत्र में महाराजा नरेंद्रशाह से क्षेत्र से बाहर नृत्य संगीत की इजाज़त की दरख़्वास्त करती है और कहती है :

अत्यंत नम्रता से प्रार्थना करम है कि ख़ादिम कुछ अर्से से इलाक़े-ए-ग़ैर में गाना बजाना सीखने के सिलसिले में रहती है और मगर हर साल अपनी हाज़री इलाक़ा हाक़िम के पास और गाँव रंवई में पहुँच कर देनी पड़ती है ऐसी सूरत में गुलामन को ज्योर हर्जा ख़र्चा देना पड़ता है।[50]

प्रमाण पत्र वाली यह व्यवस्था स्वयं में दिक़्क़त तलब थी। कारण, एक तो सर्टिफिकेट दलित नृत्यांगना की वास्तविक छवि या जीवन-शैली में कोई परिवर्तन नहीं लाता और दूसरा नृत्यांगनाएँ अपनी नैतिकता के लिए राज्य की मुहर की मोहताज थीं।[51] सन् 1871 में ब्रिटिश सरकार द्वारा कुछ जातियों के रज़िस्ट्रेशन, निगरानी और नियंत्रण के लिए क्रिमिनल ट्राइब ऐक्ट जारी किया

---

[48] वही.

[49] वही.

[50] वही.

[51] प्रियदर्शिनी विजयश्री (2010) : 63.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 298

गया। शुरुआत में इसे नॉर्थ वेस्ट प्रोविन्स, अवध और पंजाब में लागू किया गया, बाद में पूरे ब्रिटिश भारत में लागू किया गया।[52] इसके तहत कुछ जातियों को 'अपराधी जाति' घोषित किया गया। इसमें इन जातियों के रजिस्ट्रेशन, उपस्थिति दर्ज कराना, सीमित आवाजाही, पास की व्यवस्था, सुधारक कार्यशाला, बच्चों को माता-पिता से अलग करना, पुनर्स्थापन आदि नियम थे।[53] आनंद यंग कहते हैं कि अंग्रेज़ों द्वारा 'जाति' को प्रत्येक समुदाय के आर्थिक, सामाजिक व व्यावहारिक गुणों के स्थायी निर्धारक के तौर पर समझा गया। वह आगे कहते हैं भारतीय समाज के सामाजिक और आर्थिक आयाम की पर्याप्त समझ के बिना और उक्त जाति के इतिहास को जाने बग़ैर पूरे जातीय समूह को दोषी क़रार किया जा रहा था।[54]

हम देखते हैं कि यह दलित नृत्यांगनाएँ मुख्यतः टिहरी रियासत से हैं, इन्हें क्रिमिनल ट्राइब के तौर पर वर्गीकृत भी नहीं किया गया था। किंतु इनके विषय में जो पूर्वाग्रह और रूढ़ छवियाँ थीं वह 'अपराधी जाति' के समान ही थी। दलित नृत्यांगनाओं पर निगरानी और नियंत्रण का तंत्र था वह जाति विशेष था। उनकी 'जाति' उनके व्यवहार और गुणों की 'स्थायी निर्धारक' थी। सरक्युलर के नियम और प्रमाण पत्र की व्यवस्था स्पष्ट करती है कि राज्य के लिए ये दलित जातियाँ संदेहजनक थीं। इन्हें राज्य वेश्यावृत्ति करने वाली जाति के रूप में देखता है।

इसी प्रकार का अध्ययन रामनारायण एस रावत उत्तर प्रदेश में चमार जाति के संदर्भ में करते हैं। वह कहते हैं कि 19 वीं सदी के अंत में बड़ी संख्या में मवेशियों की मृत्यु पर चमार को मवेशियों को ज़हर देने का दोषी ठहराना आम नौकरशाही प्रतिक्रिया थी। हालाँकि चमार को मवेशियों को ज़हर देने का दोषी ठहराना आज़ादी के बाद भी ख़त्म नहीं हुआ। यह दोषारोपण उस वर्चस्व प्राप्त नजरिए को पेश करता है जो चमार को स्वाभाविक अपराधी मानता है, इसे उनका परंपरागत व्यवसाय मानता है। रावत कहते हैं औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक दोनों ही अधिकारी मानते थे कि चमार का मवेशियों को ज़हर देने में आर्थिक उद्देश्य है। जैसा कि चर्म शोधन और जूते बनाना वंशानुगत व्यवसाय है, मरे हुए मवेशियों पर उनके अधिकार को उनके द्वारा गाँव में दी जाने वाली सेवाओं का भुगतान समझा जाता था। औपनिवेशिक राज्य द्वारा सर्वप्रथम 1854 में मवेशियों को ज़हर देना 'पेशेवर और नियोजित अपराध' घोषित किया गया। बाद में चमार जाति पर इस दोष का विस्तार कर दिया गया और मवेशियों से संबंधित अन्य अपराधों को भी जैसे चोरी, मवेशियों में बीमारियों का फैलना भी चमार जाति से जोड़ दिए गए। रावत कहते हैं कि अहीर और जाट की तरह चमार को 1871 के क्रिमिनल ट्राइब ऐक्ट में अपराधी के तौर पर वर्गीकृत नहीं किया गया था, लेकिन पूरी 19वीं सदी के दौरान उनका वर्णन और निर्धारण अपराधी जाति के तौर पर किया गया।[55]

[52] आनंद ए. यंग (1985) : 109.

[53] संजय निगम (1990) : 257.

[54] आनंद ए. यंग (1985) : 126.

[55] रामनारायण एस. रावत (2011) : 24-25.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 299

समाज का रवैया

यहाँ पर मैं मुख्य रूप से उच्च जातीय हिंदू सुधारकों व पुरुषों की बात करूँगी। जिसमें हम उनकी असलियत, विडंबना और उत्कंठा को देखेंगे। निम्नलिखित पत्र अशोक आश्रम के प्रमुख धर्मदेव शास्त्री ने टिहरी गढ़वाल के महाराजा को भेजा :

> श्रीमान महाराजा महोदय
> आशी,
> मैं दो आवश्यक बातों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने के लिए यह पत्र लिख रहा हूँ
> 1 आप के राज्य के अंतर्गत रामा सरभू इलाक़ा से कोल्टा डोम जाति की अनेक (सैकड़ों) स्त्रियाँ पेशा करने के लिए मैदानी शहरों में जा रही हैं मुझे पता चला है कि आप ने क़ानून द्वारा इस इस बुराई को बंद किया हुआ है परंतु आप के कर्मचारी कुछ पैसे लेकर इस बुराई को बढ़ाते जा रहे हैं। कृपया इस ओर कड़ाई का व्यवहार करके इस बुराई को बंद कीजिये आपके राज्य की बड़ी बदनामी हो रही है। हमारे पहाड़ तथा जाति का अपमान हो रहा है। मैं चाहता हूँ कि अशोक आश्रम पड़ोसी राज्य की भी कुछ सेवा करें...[56]

उपरोक्त पत्र में नैतिकतावादी पुट है। बुराई की भाषा में प्रकट किया गया है। दलित स्त्रियों को सुधार योग्य पात्र माना गया है तथा इस सुधार का बोझ उच्च जातीय पुरुषों ने ख़ुद पर ले लिया है। चारु गुप्ता भी सुधारकों और राष्ट्रवादियों के इस प्रकार के दृष्टिकोण की अनुबंधित मज़दूर महिलाओं के संदर्भ में बात करती हैं। यह महिलाएँ मुख्यतः दलित थीं। सुधारक और राष्ट्रवादी इन्हें अबोध पीड़ित और दोषी प्रवासी के रूप में प्रदर्शित कर रहे थे। चारु गुप्ता कहती हैं कि अनुबंधित मज़दूरी तथा वेश्यावृत्ति में आम और संकीर्ण संबंध क़ायम किया गया। श्रम की परिस्थितियाँ जाने बग़ैर सहमति से किए गए एवं शोषक और जबरन प्रवास के बीच अंतर को ख़त्म कर दिया गया। सुधारक पेश कर रहे थे कि प्रवासी मज़दूर महिला की ख़तरनाक यौनिकता को नियंत्रित करने की आवश्यकता है।[57] इन दलित नृत्यांगनाओं का बीड़ा उच्च जातीय पुरुषों को ही उठाना है इसके उदाहरण अन्य पत्रों में भी मिलते हैं। कुंवर सिंह भंडारी 1949 में अपने पत्र में कहता है :

> निश्चय हुआ है कि वेश्यावृति का पेशा टिहरी गढ़वाल स्टेट में न्याय विरुद्ध घोषित कर दिया जाए। इस के अतिरिक्त यह भी निश्चय हुआ है कि दलित जातियों की औरतें जो वेश्यावृत्ति द्वारा पेट के लिए टिहरी गढ़वाल स्टेट से बाहर भारत के विभिन्न स्थानों में जाती हैं वे क़ानून इस पेशे में जाने के लिए रोक दी जाएँ।[58]

---

[56] फ़ाइल एम, बॉक्स 22, केस न. 4 उत्तराखंड स्टेट आर्काइव, देहरादून.

[57] देखें, चारु गुप्ता (2016).

[58] फ़ाइल एम, बॉक्स 22, केस न. 4 उत्तराखंड स्टेट आर्काइव, देहरादून.

इस विमर्श में गढ़वाल के पंचों का भी हस्तक्षेप था। वह 1949 में टिहरी गढ़वाल मिनिस्टर को पत्र में कहते हैं :

> श्रीमान जी निवेदन है के टिहरी गवर्मेंट से जो औरतें पेशे के लिए आती हैं उनमें बहुत-सी नाबालिग और कुछ फरारी इलाक़े में दीगर इस वक़्त ज़्यादा सुनने में आ रहा है के मिनिस्टर साहेबानो ने कुछ नाबालिग लड़कियों जोके पेशे में रहती हैं देहरादून से गीराफ़दार करवाई। हम लोगों को बहुत ख़ुशी हुई कि आप इन लोगों को इस बुरे काम से बचाने के लिए कोसिस कर रहे हैं। आप के लिए हमारा बड़ा धन्यवाद है।[59]

इन पंचों का भी पूरा ज़ोर 'बुराई' को मिटाने में है। अपने-अपने स्तर पर ये सभी उच्च जातीय पुरुष राज्य को इस संदर्भ में सुझाव दे रहे थे। धर्मदेव शास्त्री कहता है :

> टिहरी राज्य में कृपया रचनात्मक कार्यों को प्रोत्साहन दीजिये, यदि आप इस कार्य के लिए अशोक आश्रम को अपने राज्य में कार्य के लिए सुविधा और सहायता दे तो कुछ कार्य हो सकता है। ऊन का उत्पादन, हरिजन-प्रचार और स्त्री जाति सुधार यह तीन कार्य यदि आप के राज्य में हो जावे तो जनता को और राज्य को लाभ होगा। इस दिशा में कार्य की रूपरेखा और नीति संबंधी बाते पीछे हो सकती है।[60]

कुंवर सिंह भंडारी भी इसी प्रकार का प्रस्ताव दृढ़ता से रखता है :

> उनकी (दलित जातियों) की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए उनको खेती बाड़ी की सुविधाएँ दी जाएँ तथा कला-कौशल के कामों में लगाया जाए। सरकार इस प्रस्ताव को अविलम्ब कार्य रूप में प्रस्तावित करे।[61]

धर्मदेव शास्त्री और कुंवर सिंह भंडारी दलितों की आर्थिक सुदृढ़ता का सुझाव देते हैं तो गढ़वालियान पंच क़ानूनी सख़्ती की बात करते हैं। क्षेत्र से बाहर जाने की किसी भी प्रकार की गुंज़ाइश पर पूर्ण पाबंदी की तरक़ीब बताते हैं :

> अर्ज यह है के इस तरीक़े से अर्सा मुधत तक यह काम बंद होगा बल्के आसान तरीक़ा यह है कि जहाँ से इन लोगों की ख़ास आमद .... यानि सुवाखोली मसूरी चकराता चाडपुर हो कर ये निकलते हैं इन दो जगहों के लिए कोई मुक्तिफ इंतेजाम कोई जजिंदा सख़्स रखा जाए ताकि हम वह उनको वापिस करें। तीसरा अलग-अलग सरक्युलर एस.डी.ओ सर्कल व एस. ओ पुलसाहेबानो को सख़्त हुक़्म दिया जाए की ओ हरेक मौजा में मालगुजारो को.... कर दे और उनसे मुचलके के लिए जावें.... अर्ज है की आप हमारी अर्जी पर ज़रूर ग़ौर करेंगे।[62]

[59] वही.

[60] वही.

[61] वही.

[62] वही.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 301

वर्चस्व चाहे जाति आधारित हो, उपनिवेशवाद के रूप में हो या पूँजीवाद के रूप में विजित या वर्चस्व प्राप्त तबक़ा न केवल स्त्री यौनता पर दृढ़ नियंत्रण रखता है बल्कि इस क्रम में पराजितों या पराधीनों की यौनिकता के क़ायदों का निर्धारण भी करता है।[63] ब्राह्मणों की आचार संहिता में विभिन्न जाति की स्त्रियों के आचरण के लिए अलग-अलग कठोर निर्देश थे। जाति के आधार पर भिन्नता के बावजूद जो एक बात सामान्य थी वह यह कि जातियों के पदानुक्रम में किसी जाति की स्थिति के लिए उस जाति की 'स्त्री' का आचरण निर्धारक था।[64] यहाँ पर आचरण का सीधा संबंध स्त्री की यौनिकता से है। इस प्रकार राज्य के स्तर पर सामूहिक रूप से सभी स्त्रियों पर राज्य की इज़्ज़त को बरक़रार रखने या उसे ढोने की ज़िम्मेदारी थी। सिविल सोसाइटी इसी 'इज़्ज़त' या 'सम्मान' के प्रति चिंताग्रस्त थी। जिसे नृत्यांगनाओं की अनियंत्रित यौनिकता चोट पहुँचा रही थी।

उपरोक्त उच्च जातीय पुरुषों की चिंता के दोहरे आयाम थे। एक ओर नृत्यांगनाओं की अनियंत्रित यौनिकता राज्य की इज़्ज़त के लिए ख़तरा पैदा कर रही थी, सिविल सोसाइटी में उत्कंठा पैदा कर रही थी। वहीं दूसरी ओर इसी अनियंत्रित यौनिकता के माध्यम से सिविल सोसाइटी समाज में 'अच्छी स्त्री' और 'अच्छे जीवन' के मापदंड निर्धारित कर रही थी अथवा पहले से स्थापित मापदंडों को मज़बूती दे रही थी। चारु गुप्ता भी उत्तर प्रदेश के संदर्भ में कहती हैं कि ऊँची जाति के सुधारकों ने निम्न जाति के उन लोकप्रिय सांस्कृतिक व्यवहारों में सुधार लाने की कोशिश शुरू की जो ख़ासकर महिलाओं से संबंधित थे। इसका कथित मक़सद था निम्न जातियों को ऊपर उठाना और उन्हें कई बुराइयों और ढीले-ढाले और 'हीन' सांस्कृतिक पैमानों से मुक्ति दिलाना। इसका असर उच्च जातीय वर्चस्व बनाये रखने पर भी पड़ा और उच्च जातीय आदर्श और व्यवहार पहले से ज़्यादा मजबूत हुए।[65] इस प्रकार उपरोक्त उत्कंठा के द्वारा समाज में प्रसारित हो रहा था कि अनियंत्रित यौनिकता एक सामाजिक बुराई है तथा इसे तुरंत रोका जाना अनिवार्य है।

दलित जाति : स्त्री- पुरुष संबंध

इस बिंदु पर आकर अब यह जानना ज़रूरी है कि स्वयं दलित समाज में स्त्री-पुरुष संबंध का स्वरूप क्या था? काँचा इलैया का मत है कि ऊँची जाति की स्त्रियों और निम्न जाति की स्त्रियों के बीच मूलभूत अंतर भौतिक संसाधनों पर अधिकार होने या न होने में है। कई और भी दलित चिंतक हैं जो यह मानते हैं कि दलित स्त्रियाँ अपेक्षाकृत कम शोषित हैं। कारण, न तो उनको पतिव्रता बने रहने का निर्वाह करना पड़ता है और न ही वे अपने पतियों को पूज्य मानने के

---

[63] प्रियदर्शिनी विजयश्री (2010) : 14.

[64] उमा चक्रवर्ती (2011) : 104.

[65] चारु गुप्ता (2012) : 31.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 302

लिए बाध्य हैं। ऊँची जाति की स्त्रियों का सम्मान उनके पुरुष के सम्मान पर निर्भर करता है। जबकि दलित स्त्रियाँ अपने सम्मान के लिए इस भाँति 'अन्य' आश्रित नहीं है। इसके साथ ही इज़्ज़त, आदर, मर्यादा, लाज का ख़याल ऊँची जाति की स्त्रियों को अपना दर्द ज़ाहिर करने से रोकते हैं लेकिन दलित स्त्रियाँ इस तरह की किसी बंदिश से नहीं बँधी हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि दलितों में पितृसत्ता[66] नहीं है।[67] बल्कि पितृसत्ता घर के बाहर और भीतर दोनों ही जगहों पर विद्यमान है, लेकिन इनसे कौन स्त्री कितनी प्रभावित होगी यह उसकी जाति पर निर्भर करता है।[68] और एक दलित स्त्री घर के बाहर और भीतर दोनों ही क्षेत्रों में पितृसत्ता को झेलती है। क्योंकि अपने पुरुष (दलित पुरुष) के अतिरिक्त समाज के सभी पुरुष उस पर अपने अधिकार का दावा करते हैं। मसलन, बिहार में डोला प्रथा का प्रचलन था। डोला का अर्थ उस पालकी से है जिसमें नव वधू को बैठाकर अपने पति के घर लाया जाता था दमनकारी जाति व्यवस्था और आर्थिक शोषण के कारण ज़मींदार या भूस्वामी वर्ग इस पर अपना जन्म अधिकार समझते थे और परवर्ती समय में यह उनकी संस्कृति बन गई जिस के अनुसार दलित नव वधू को अपने विवाह के पश्चात पहली रात स्थानीय उच्च/मध्य जातीय/वर्गीय ज़मींदार के साथ बितानी होती थी।[69] इसी तरह का अन्य उदाहरण उमा चक्रवर्ती देती हैं कि राजस्थान में, राजपूतों में यह रिवाज़ था कि नववधू एक दारोगा स्त्री के साथ ही ससुराल में गृह प्रवेश करे। उस दारोगा स्त्री को उसी गाँव में दारोगा पुरुष से ब्याह दिया जाता था। घर में काम-काज़ करने के साथ-साथ वह स्त्री घर के मर्दों की यौन तुष्टि भी करे, उससे यह अपेक्षा की जाती थी।[70]

हीरा : एक दलित नृत्यांगना

14 मई, 1947 को हीरा नाम की दलित स्त्री टिहरी राज्य के महाराजा को ख़त लिखती है कि :

> मैं एक जवान स्त्री हीरा पिता का नाम लक्ष्मणदास और गोहाना की निवासी हूँ। अपने दुर्भाग्य के कारण मैं एक लंबे समय से वेश्या हूँ लेकिन अब मैं इस पेशे को छोड़ना चाहती हूँ तथा

---

[66] चूँकि नारीवादी अध्ययन एक नया क्षेत्र है इसलिए नारीवादी विमर्श का लगभग पहला काम यही था कि महिलाओं को अधीन करने वाली जटिल संरचना को पहचाना जाए और उसे एक उचित नाम दिया जाए इस प्रकार, बीसवीं सदी के आठवें दशक के मध्य से नारीवादी विशेषज्ञों ने पितृसत्ता शब्द का प्रयोग और उसे विशिष्ट अर्थ में परिभाषित करना शुरू किया. गर्डा लर्नर के अनुसार, पितृसत्ता, परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरुषों के वर्चस्व की अभिव्यक्ति और संस्थागतकरण तथा सामान्य रूप से महिलाओं पर पुरुषों के सामाजिक वर्चस्व का विस्तार है.

[67] उमा चक्रवर्ती (2011) *:* 82.

[68] प्रियदर्शिनी विजयश्री (2010) : 16.

[69] सुमित एस. श्रीवास्तव, 'वायलेंस ऐंड दलित वीमेंस रेसिस्टेंस इन रूरल बिहार', इंडियन एंथ्रोपॉलॉज़िकल ऐसोसिएशन, वॉल्यूम 37, न.2, जुलाई-दिसंबर, 2007.

[70] उमा चक्रवर्ती (2011) : 82.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 303

> मोहम्मद अशरफ़ ख़ान सरकारी ठेकेदार, हौज़ मुज़फ्फर खान, तुर्कमान गेट पुरानी दिल्ली के साथ शादी करना चाहती हूँ, जिससे मैं बहुत प्रेम करती हूँ। मैं अनुरोध करती हूँ कि मुझे ऐसा करने की अनुमति दी जाए।[71]

इस पत्र के पश्चात हीरा का पिता लक्ष्मन दास ढाकी 27 अगस्त 1947 को लिखित तौर पर अपना बयान देता है कि :

> मुस्मात हीरा बेटी लक्ष्मनदास मौजा गवाना यही बराहाट वाली इस वक़्त देहरादून में है। जोकि गाने-बजाने का काम करती है। मैं सोनकू उर्फ़ लक्ष्मनदास गवाना वाला ज़ाहिर करता है कि मेरी लड़की की कोई दरख़्वास्त शादी बावत पेश नहीं की है। और न उसका शादी करने का विचार है। यह दरख़्वास्त किसी दुश्मन ने झूठी... पेश कराई है।[72]

उपरोक्त बयान दलित पितृसत्ता के पेचों को खोलता है, दलित स्त्री को घर से बाहर निकलने, आर्थिक श्रम करने की स्वतंत्रता है, किंतु वह अपना प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। स्त्री का वजूद सदैव उसके परिवार के पुरुष से है, जो कि यहाँ पर उसका पिता है स्त्री की इच्छा अनिच्छा का घोषक पुरुष है। स्त्री को अपने जीवन का विवाह जैसा महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने का भी अधिकार नहीं है। तथा क़ानून भी पुरुष को स्त्री का प्रतिनिधि मानकर पितृसत्ता को मज़बूती प्रदान करता है। हीरा का 20 अप्रैल, 1949 का चीफ़ मिनिस्टर टिहरी गढ़वाल को पत्र उसके पिता के उपरोक्त बयान की तहों को और खोलता है। हीरा के शब्दों में :

> गुजारिश है की सायलक की उमर 26/27 साल की है। और मेरे माता पिता ने मुझे गाने बजाने के काम से 14/15 साल की उमर से रख लिया था। जिससे मुझे टिहरी दरबार से अजाजत शुला का सर्टिफिकेट मिला हुआ है। और इस अरसे के अंदर मैंने इन को अपने माता पिता को हजारों रुपये कमा कर दिए। साल गुबिरखा में जो घर गई। मुझे अपनी कमाई का कुछ नजर नहीं आया दिल को सदमा हुआ। इस वक़्त तो जवानी है, बुढ़ापे में कहा जाऊँगी।[73]

उपरोक्त कथन से अनुमान लगाया जा सकता है कि कैसे दलित पुरुष द्वारा दलित स्त्री की यौनिकता और श्रम का दोहन किया जा रहा था। निम्न जातीय स्त्री को उच्च जातीय स्त्री की तुलना में स्वतंत्रता प्राप्त थी किंतु यह सीमित स्वतंत्रता थी। कह सकते हैं कि दलित स्त्री की स्थिति कठपुतली के समान थी, जो नृत्य तो कर सकती थी, किंतु कैसे करेगी और कब तक करेगी इसका पूर्ण संचालन पुरुष के हाथ में था। स्त्री को घर से बाहर कार्य करने की स्वतंत्रता तो प्रदान की गई थी, किंतु जैसे ही उसकी आज़ादी पुरुष के हित के विरुद्ध जाती है, उसकी

---

[71] फ़ाइल एम, बॉक्स 22, केस न. 4 उत्तराखंड स्टेट आर्काइव, देहरादून.

[72] वही.

[73] वही.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 304

डोरियो को खींच लिया जाता है।

उपरोक्त उदाहरण में हम देखते हैं कि हीरा 14/15 वर्ष की उम्र से ही नृत्य संगीत द्वारा(आगे चलकर यौन कार्य द्वारा भी) धनार्जन कर रही थी। तथा अपने परिवार की आर्थिक सहायता कर रही थी, किंतु जब अपने यौवन के चरम बिंदु में आकर वह अशरफ़ ख़ान नामक व्यक्ति से विवाह करना चाहती है तो उसका पिता साफ़तौर पर उसे नकार देता है। इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है, कि हीरा के विवाह के पश्चात उसकी सम्पत्ति पर उसके पिता का अधिकार ख़त्म हो जाने का भय ही था जिसकी वजह से वह क़ानून के समक्ष हीरा द्वारा शादी की दरख़्वास्त को नकारता है। दूसरी बात स्त्री की यौनिकता आज भी पितृसत्ता और जाति के अधीन है और उसे केवल उसका पति/अभिभावक ही भावी पति को सौंप सकता है।[74] एक अन्य उदाहरण बालमदास बाजगी का है जो टिहरी सरकार से अपनी बहन को वापस घर भेजने की प्रार्थना करता है :

> अर्ज है कि फिदवी बाजगी कौम का आदमी है। अपना बाजगी पेशा कर गुज़र बसर करता है फरीकसानी मु. राजकुंवर तवायफ़ फिदवी की ख़ास मौसी है फिदवी की माता ने अपनी लड़की मु. विद्या उर्फ़ बालमी ह्स्व रजामन्दी के मु. राजकुंवर के साथ गाने बजाने का काम सीखने के लिए देशावर में भेजा था मगर अब वह उसको वापिस नहीं भेज रही है। फिदवी उसकी शादी अपने पहाड़ में हमकौम के साथ करना चाहता है और देशावर में रखकर उसको तवायफ़ का पेशा नहीं कराना चाहता।[75]

जहाँ हीरा का पिता उसे विवाह करने से रोक रहा है अनुमानतः वह नहीं चाहता की हीरा नृत्य-संगीत व वेश्यावृत्ति का कार्य छोड़े, वही बालमदास अपनी बहन का विवाह करना चाहता है वह नहीं चाहता कि उसकी बहन तवायफ़ का कार्य करे। हालाँकि दोनों ही वृत्तांत एक दूसरे के विपरीत लगते हैं किंतु दोनों एक ही कड़ी से जुड़े हैं। दोनों ही मामलात में स्त्री की स्वयं की आवाज़ अदृश्य है। शादी और रोज़गार के संदर्भ में उनके स्वयं के फ़ैसले कोई मायने नहीं रखते तथा स्पष्ट होता है कि स्त्री की यौनिकता पर पुरुष का पूर्ण नियंत्रण था। चारु गुप्ता कहती हैं कि दलितों ने अकसर घरेलू क्षेत्र में पितृसत्तात्मक मूल्यों को अंगीकार किया, भले ही यहाँ नियंत्रण का तर्क दलित स्त्रियों को ज़्यादा सम्मान दिलाने के साथ जुड़ा था।[76]

विरोध के स्वर

राज्य द्वारा इन दलित नृत्यांगनाओं की जो छवि बनाई जा रही थी उसमें इन नृत्यांगनाओं के पत्र और प्रतिक्रियाएँ दरार पैदा करती हैं। राज्य इन्हें पीड़िता के रूप में प्रस्तुत कर रहा था जो

---

[74] उमा चक्रवर्ती (2011) : 144.

[75] फ़ाइल एम, बॉक्स 22, केस न. 4 उत्तराखंड स्टेट आर्काइव, देहरादून.

[76] चारु गुप्ता (2013), *प्रतिमान : समय समाज संस्कृति*, खंड 1, जनवरी-जून : 121.

सदैव निष्क्रिय अवस्था में थी, जिसके दोषी को सज़ा देना अनिवार्य था। किंतु कई महिलाएँ थीं जो स्वयं के अतीत, वर्तमान व भविष्य के प्रति जागरूक थीं तथा अपने अधिकार व इच्छा के लिए आवाज़ उठा रही थी। ऐसी ही एक स्त्री थी पसंदी उर्फ़ हीरा जो ढाकी जाति से थी। हीरा चीफ़ मिनिस्टर टिहरी गढ़वाल को पत्र लिखती है। उसका पत्र उसकी जागरूकता व सक्रियता को दर्शाता है :

> श्रीमान जी,
> गुजारिश है की सायला की उमर करीबन 26/27 साल की है और मेरे माता पिता ने मुझे गाने बजाने के काम से 24/25 साल की उमर से रख लिया था। जिसमें मुझे टिहरी दरबार से अजाजत शुला का सटिफिकेट मिला हुआ है। और इस अरसे के अंदर मैंने इन को अपने माता पिता को हज़ारो रुपए कमा कर दिए। साल गुबिरखा में मैं जो घर गई। मुझे अपनी कमाई का कुछ नजर नहीं आया दिल को सदमा हुआ। इस वक़्त तो जवानी है। बुढ़ापे में कहाँ जाऊँगी। इसलिए मैं ख़ुद मुख़्तार हूँ और मैंने इन के साथ में रहना ठीक नहीं समझा अब अपना अलग हूँ। और अपना भला बुरा ख़ुद सोच समझ सकती हूँ। मुझे कोई भगा कर नहीं लाया मैं ख़ुद आई हूँ और बालिग हूँ। अब यही अरज है कि मैं अपना अलग रहना चाहती हूँ और इन के साथ मैं नहीं रहूँगी। पहाड़ जा कर भी इन से अलाहिदा रहूँगी। और मुझ को मजाज होगा कि जिस को चाहूँ उस को अपने पास रखूँगी। इन का कोई उजर यानी मेरे माता पिता का समाअत ना होगा। मैं जो चाहूँ वह करूँगी। लिहाजा इतलाह के लिए खिदमत में पेश है। इस वक़्त मैं जवान हूँ। अपने बुढ़ापे के लिए ज़रूर किसी को अपनी शोहरी परवरिश के लिए रक्खूँगी, चूँकि मैं शादीशुदा तो हूँ ही नही, और कुमारी हूँ। 30 अप्रैल, 1949.[77]

हीरा बाई पितृसत्ता को चुनौती देती है, स्त्री की यौनिकता पर पुरुष के नियंत्रण पर चोट करती है तथा एक वेश्या के सदैव एक 'पीड़िता' होने की विचारधारा को चुनौती देती है। अपनी स्वायत्तता, इच्छा तथा स्वतंत्रता का दावा करती है। दलित नृत्यांगनाएँ जाति चेतना का भी उदाहरण प्रस्तुत करती हैं, मिसाल के तौर पर कुछ दलित नृत्यांगनाएँ 30 मार्च, 1949 में चीफ़ मिनिस्टर टिहरी गढ़वाल को सामूहिक स्मृतिपत्र (मेमोरियल) भेजती हैं :

> जैसाकि विदित है संस्मरण लेखक टिहरी गढ़वाल प्रांत के मूल निवासी हैं तथा अपने जीवन यापन के लिए नाचने-गाने के पेशे में वर्षों से संलग्न हैं।[78] याचिकाकर्ता पेशेवर नर्तकियों और गायकों के एक वर्ग से संबंधित हैं और यह उनके लिए प्रथागत है कि वे अपने बच्चों और आश्रितों को उक्त व्यवसायों से पालते हैं।[79] टिहरी गढ़वाल में, प्राचीन काल से उनका सामाजिक जीवन 'अस्पृश्यों' का रहा है और इस अक्षमता के कारण उन्हें किसी अन्य व्यवसाय में नेतृत्व या संलग्न होने की संभावना से दूर कर दिया गया।[80]

---

[77] फ़ाइल एम, बॉक्स 22, केस न. 4 उत्तराखंड स्टेट आर्काइव, देहरादून.

[78] वही.

[79] वही.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 306

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि इन महिलाओं में जातीय चेतना थी। वह यह नहीं मानती की उनके द्वारा जातीय तौर पर नृत्य संगीत द्वारा जीविकोपार्जन करने की व्यवस्था ईश्वर ने बनाई है। वह इस बात पर भी विश्वास नहीं करती कि यह पेशा ही उनकी नियति है या कर्मों का फल है। वह इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हैं कि जाति व्यवस्था में उन्हें अस्पृश्य श्रेणी में रखने के कारण उनके जीविकोपार्जन के साधन सीमित हैं। अस्पृश्यता के कारण ही रोज़गार के अन्य अवसर उन्हें उपलब्ध नहीं हैं, किंतु इस व्यवस्था का कोई विकल्प उन के पास नहीं है। इन दलित नृत्यांगनाओं का संघर्ष केवल जीविकोपार्जन के साधन व राज्य में आवागमन की आज़ादी तक ही नहीं था बल्कि सामाजिक स्तर पर रचे गए अर्थों, परिभाषाओं और अस्मिताओं के बरअक्स भी था :

> भारत में विदेशी शासन के अंधकार के दिनों में अकेले मेमोरिलिस्ट और उनके पूर्वाधिकारी ही नृत्य और संगीत को इस देश में जीवित रखने के लिए ज़िम्मेदार है।
> मेमोरिलिस्ट्स की विशेषताओं में आपत्तिजनक केवल यौनिक आकर्षण है जोकि उनके पेशे के मूल में अंतर्निहित है।
> यहाँ तक की सुदूर अतीत में भी लगभग सभी राजाओं के पास पेशेवर संगीतज्ञ और नर्तक हुआ करते थे, विक्रमादित्य और भोज इस कला के प्रबल पूजक थे तथा सर्वोच्च प्रतिभा को राज नर्तक एवं संगीतज्ञ के रूप में रखते थे।
> मेमोरिलिस्ट नृत्य और संगीत के उसी स्कूल का प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि उन प्रतिष्ठित संगीतज्ञ और नर्तक के उत्तराधिकारी हैं। हालाँकि आर्थिक और अन्य कारणों से जोकि उनके नियंत्रण से बाहर हैं मेमोरिलिस्ट ने बदनामी को प्राप्त किया है।
> मेमोरिलिस्ट दावा करते हैं कि प्रतिकूल परिस्थितियों में कला की मशाल को जलाये रखने के मेमोरिलिस्ट के प्रयास की वजह से ही देशवासियों ने कला को अपने घर, स्कूल और अकादमिक जगत में पुनर्जीवित करने के योग्य हो पाएँ।[81]

ये नृत्यांगनाएँ इतिहास में दावा करते हुए, अपनी अस्मिता का निर्माण करती हैं नाचने गाने वाली के तौर पर उनकी जो निम्नतर की छवि है, वेश्यावृत्ति की आशंका पर उन पर जो प्रतिबंध हैं, ये उस हीन/नकारात्मक छवि को चुनौती देती हैं तथा स्वयं की 'कला के रक्षक' की अस्मिता का निर्माण करती है। वह 'हीन' से 'श्रेष्ठ' की छवि का निर्माण करती हैं जिसके लिए न केवल सभ्य समाज में नृत्य संगीत के महत्त्व व उसके सराहे जाने का हवाला देती है बल्कि राजा भोज और विक्रमादित्य के दरबार के संगीतज्ञ और नर्तक से अपनी वंशावली जोड़ती हैं। ये नृत्यांगनाएँ उन नर्तकों तथा उस कला का प्रतिनिधि होने का दावा करती हैं जिसके राजाभोज एवं विक्रमादित्य जैसे यशस्वी राजा प्रशंसक थे।

---

[80] वही.

[81] वही.

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 307

अंजलि अरुन्दिकर भी गोमंतक मराठा समाज (जो अपने अंदर विभिन्न जातियों को समाए हुए था) द्वारा नई अस्मिता के निर्माण की बात करती है। गोमंतक मराठा समाज अपने अतीत और यौनिकता के प्रति शर्म या पतन का नज़रिया नहीं रखते बल्कि उसके प्रति आशावादी रवैया रखते हुए एक बेहतर भविष्य की कामना करते हैं।[82] यह नृत्यांगनाएँ उस तर्क को ही उल्टा कर देती हैं जिसके अनुसार वह समाज की नैतिकता में खलल डालती हैं। इसके विपरीत वह समाज में नैतिकता को बनाए रखने में अपने योगदान की बात करती हैं। वह कहती हैं :

> याचिकाकर्ता के पेशे को लोक नैतिकता को भ्रष्ट करने से जुड़ा-कलंक समझना, पूरी तरह से निराधार है। वास्तव में यह याचिकाकर्ता हैं, जो महिलाओं के बीच एक उच्च नैतिक स्तर को बनाए रखने में सफल हुए हैं। जोकि देश में अच्छी तरह से सुव्यवस्थित और सामाजिक जीवन में उसका कोई छोटा योगदान नहीं है।[83]

इसी प्रकार अनुपमा राव महाराष्ट्र में मुरली की बात करती हैं। मुरली, में महार, माँग, कुंबी और तथाकथित घुमंतू समुदाय से थीं, जिनका जेजूरी में भगवान खंडोबा से विवाह कर दिया जाता था। किसी व्यक्ति से उनके विवाह पर प्रतिबंध था, भगवान खंडोबा की सांकेतिक पत्नी होने के नाते वह पुरुषों को यौनिक सेवा देने के लिए प्रतिबद्ध थीं। 1908 में सोमवंशीय मित्रम् ने शिवुबाई वलाड जोकि एक मुरली थी, का पत्र प्रकाशित किया। शिवुबाई का पत्र उन सुधारकों के विरोध में था जोकि कलंकित प्रथाओं ख़ासकर धार्मिक अर्पण और यौन दासत्व को मिटाने का भरसक प्रयास कर रहे थे। शिवुबाई महार पंच के उस पत्र पर प्रतिक्रिया देती हैं, जिसमें मुरली को सामाजिक बुराई तथा दलित पुरुषों एवं उनके घर को बर्बाद करने वाला बताया गया था। शिवुबाई का कहना था कि उसके समुदाय के पुरुषों द्वारा उसे इस पेशे में आने के लिए बाध्य किया गया है और कई औरतें इससे बचने के लिए इस्लाम व ईसाईयत में धर्मांतरित हो गईं। वह इस प्रथा को क़ायम रखने के लिए अपने समुदाय के पुरुषों को ज़िम्मेदार ठहराती है और ऐसे पिताओं के ख़िलाफ़ अभियान की बात करती हैं जो अपनी बेटियों का अर्पण करते हैं।[84] शिवुबाई महार पंच का विरोध अवश्य करती हैं तथा स्वयं की स्थिति के लिए पुरुषों को ज़िम्मेदार ठहराती हैं, वह पितृसत्ता पर चोट करती हैं किंतु समाज में मुरली की 'घर तोड़ने वाली', 'बुरी स्त्री' की जो छवि है उसके संदर्भ में वह कुछ नहीं कहती, उसके पत्र से ऐसा आभास होता है कि वह मुरली प्रथा के नकारात्मक पक्षों को स्वीकार करती है तथा स्वयं को पुरुषों का 'शिकार' मानती है।

---

[82] अंजलि, अरुन्देकर, (सं.) ऐनिया लूम्बा और रिटी ए. लुकोज़ (2012) : 247.

[83] फ़ाइल एम, बॉक्स 22, केस न. 4 उत्तराखंड स्टेट आर्काइव, देहरादून.

[84] अनुपमा राय (2012) : 256-257.

निष्कर्ष

परंपरागत तौर पर नृत्य संगीत का पेशा करने वाली न केवल दलित नृत्यांगनाओं बल्कि दलित जातियों का उनकी जातीय अस्मिता के आधार पर अपराधीकरण किया जा रहा था। नृत्यांगनाओं के नाचने-गाने व उनकी अनियंत्रित यौनिकता के कारण राज्य को उन पर वेश्यावृत्ति का संदेह था। राज्य समय-समय पर इन जातियों के विषय में रूढ़छवियों को दर्शाता है कि वेश्यावृत्ति करना इनका स्वभाव ही नहीं बल्कि शौक़ भी है। राज्य का मानना था कि इन जातियों के किसी भी बयान और दरख़्वास्त पर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं है और न ही इस क़ौम के किसी मामले के लिए तर्क और तफ़्तीश की कोई ख़ास ज़रूरत है। इन जातियों की सामाजिक, आर्थिक वास्तविकताओं पर ग़ौर किए बग़ैर राज्य नृत्यांगनाओं की 'जाति' को उनके व्यवहार और गुणों का 'स्थायी निर्धारक' मान रहा था। राज्य की निगरानी, नियंत्रण और अनुशासन का पूरा उपकरण जाति विशेष था जो इन जातियों के रोज़मर्रा के जीवन को प्रभावित (कुप्रभावित) करता था। राज्य नियंत्रण, निगरानी और अनुशासन की पूरी प्रक्रिया में उपरोक्त दलित जातियों को वेश्यावृत्ति करने वाली जाति के तौर पर चिह्नित कर रहा था।

नृत्यांगनाओं की अनियंत्रित यौनिकता न केवल राज्य के लिए बल्कि उच्च जातीय सुधारकों के लिए भी चिंता का विषय बनी हुई थी। इस चिंता और उत्कंठा के दोहरे आयाम थे। एक ओर नृत्यांगनाओं की अनियंत्रित यौनिकता राज्य की इज़्ज़त के लिए खतरा पैदा कर रही थी, जिसे उच्च जातीय पुरुष बुराई की भाषा में प्रकट कर रहे थे। वहीं दूसरी ओर इसी अनियंत्रित यौनिकता के माध्यम से सिविल सोसाइटी समाज में 'अच्छी स्त्री' और 'अच्छे जीवन' के मापदंड निर्धारित कर रही थी अथवा पहले से स्थापित मापदंडों को मज़बूती दे रही थी।

किंतु ये दलित नृत्यांगनाएँ निष्क्रिय नहीं थीं। राज्य इन्हें 'पीड़िता' के रूप में प्रस्तुत कर रहा था, जो सदैव निष्क्रिय अवस्था में थीं, जिसके दोषी को सजा देना अनिवार्य था। और यह दोषी दलित पुरुष था जो उनसे वेश्यावृत्ति करवा रहा था। लेकिन इन नृत्यांगनाओं के पत्र और प्रतिक्रियाएँ राज्य द्वारा उकेरी गई उपरोक्त तस्वीर में दरार पैदा करते हैं। यह महिलाएँ स्वयं के अतीत, वर्तमान और भविष्य के प्रति जागरूक थी तथा अपने अधिकार और इच्छा के लिए आवाज़ उठा रही थीं। यह नृत्यांगनाएँ न केवल पितृसत्ता को चुनौती देती हैं, स्त्री की यौनिकता पर पुरुष के नियंत्रण पर चोट करती है, बल्कि 'कला के रक्षक' के तौर पर स्वयं की नई अस्मिता की रचना भी करती हैं। वह अपने पेशे के संबंध में सकारात्मक विचार रखती हैं तथा समाज में नैतिकता को बनाए रखने में स्वयं के योगदान की बात करती हैं।

संदर्भ

अंजली अरुन्देकर (2012) 'सब्जेक्ट टू सेक्स : अ स्मॉल हिस्ट्री ऑफ़ द गोमांतक मराठा समाज', एनिया लूम्बा और रिटी ए. लुकोज़ (सं.), *साउथ एशियन फ़ेमिनिज़्म्स*, ड्यूक युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन : 244-263.

अनुजा अग्रवाल (2008), *चेस्ट वाइव्स ऐंड प्रोस्टीट्यूट सिस्टर्स : पैट्रिआर्की ऐंड प्रोस्टीट्यूशन एमंग द बेडियाज़*

ऑफ़ इंडिया, रटलेज, नई दिल्ली.

अनुपमा राय (2012), 'कास्ट कॉलोनियलिज़म ऐंड द रिफ़ॉर्म ऑफ़ जेंडर : प्रस्पेक्टिव फ्रॉम वेस्टर्न इंडिया', (सं.) चारु गुप्ता, *जेंडरिंग कोलोनियल इंडिया : रिफ़ॉर्म्स, प्रिंट, कास्ट ऐंड कम्युनिलिज़म*, ओरिएंट ब्लैक स्वान, नई दिल्ली : 256-257.

अनुपमा राव (2014), 'द सेक्सुअल पॉलिटिक्स ऑफ़ कास्ट वायलेंस ऐंड द रिचुअल आर्काइव', सुमित सरकार और तनिका सरकार (सं.), *कास्ट इन मॉडर्न इंडिया*, परमानेंट ब्लैक, नई दिल्ली.

अश्विनी ताम्बे (2009), *कोड्स ऑफ़ मिसकंडक्ट : रेगुलेटिंग प्रोस्टीट्यूशन इन लेट कोलोनियल बॉम्बे*, ज़ुबान, नई दिल्ली.

आनंद ए. यंग (1985), 'डैंजरस कास्ट ऐंड ट्राइब्स : द क्रिमिनल ट्राइब्स ऐक्ट ऐंड द मगहिया डोम्स ऑफ़ नॉर्थ ईस्ट इंडिया', आनंद ए. यंग (सं.), *क्राइम ऐंड क्रिमिनेलिटी इन ब्रिटिश इंडिया*, द युनिवर्सिटी ऑफ़ अरिज़ोना प्रेस, टक्शन : 109.

उमा चक्रवर्ती (2011), *जाति समाज में पितृसत्ता*, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली.

एच. गेरल्डिन फ़ोर्ब्स (1996), *वीमेन इन मॉडर्न इंडिया*, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस.

एडविन टी. एटकिंसन (2002), द *हिमालयान गज़ेटियर ऐंड द हिमालयान डिस्ट्रिम्ट्स ऑफ़ द नॉर्थ वेस्टर्न प्रोविन्स ऑफ़ इंडिया*, लो प्राइस पब्लिकेशंस.

एम. स्वप्न बनर्जी (2004), *मेन, वीमेन ऐंड डोमेस्टिक्स : आर्टिकुलेटिंग मिडिल क्लास आयडेंटिटी इन कोलोनियल बंगाल*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

ऐंड्रू ऑल्टर (2003), *ढोल सागर : आस्पेक्ट्स ऑफ़ ड्रम नॉलेज़ एमंगेस्ट म्यूजीशियन इन गढ़वाल,* नॉर्थ इंडिया ई. बी. एच. आर. 24 : 63-76.

कुमकुम संगारी और सुदेश वैद (सं.) (2001), *रिकास्टिंग वीमेन : एसेज़ इन कोलोनियल हिस्ट्री*, काली, दिल्ली.

गेल ऑम्वेट (1994), *दलित ऐंड द डेमोक्रेटिक रेवोल्यूशन : डॉ. आंबेडकर ऐंड द दलित मूवमेंट इन कोलोनियल इंडिया*, सेज़, दिल्ली.

चारु गुप्ता (2012), *स्त्रीतत्व से हिंदुत्व तक: औपनिवेशिक भारत में यौनिकता और साम्प्रदायिकता*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.

चारु गुप्ता (2001), *सेक्सुअलिटी, ऑब्सीनिटी, कम्युनिटी : वीमेन, मुस्लिम, ऐंड द हिंदू पब्लिक इन कोलोनियल इंडिया*, परमानेंट ब्लैक, दिल्ली.

चारु गुप्ता (2016), द *जेंडर ऑफ़ कास्ट : रेप्रेजेंटिंग दलित इन प्रिंट*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

तनिका सरकार (2001), *हिंदू वाइफ़, हिंदू नेशन : कम्युनिटी रिलीज़न ऐंड कल्चरल नैशनलिज़म*, परमानेंट ब्लैक, दिल्ली.

देवेश सोनेजी (2012), *अनफ़िनिश्ड जेस्चर्स : देवदासीज़, मेमोरी ऐंड मॉडर्निटी इन साउथ इंडिया*, युनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस, शिकागो.

प्रियदर्शिनी विजयश्री (2010), *देवदासी या धार्मिक वेश्या? एक पुनर्विचार*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.

मार्क जरगेन्समेयर (2009), *रिलिजियस रेबेल्स इन पंजाब : द एडी धर्म चैलेंज़ टू कास्ट*, नवयाना,नई दिल्ली.

रामनारायण एस. रावत (2011), *रिकन्सिडरिंग अनटचैबिलिटी : चमार्स ऐंड दलित हिस्ट्री इन नॉर्थ इंडिया*, इंडियाना युनिवर्सिटी प्रेस, ब्लूमिंग्टन.

रोज़ालिंड ओ'हानलॉन (1985) *कास्ट कॉन्फ़िलक्ट ऐंड आइडियोलॉजी : महात्मा जोतिराव फुले ऐंड लो-कास्ट*

10Neeta koli_Layout 1 22-02-2024 15:45 Page 310

प्रोटेस्ट इन नाइन्टींथ सेंचुरी इंडिया, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

वसुधा पांडे (2014), *मेकिंग कुमायूँ मॉडर्न : बिलीफ़ ऐंड प्रैक्टिसेज़, 1815-1930,* नेहरू मेमोरियल म्यूज़ियम ऐंड लाइब्रेरी, नई दिल्ली.

शर्मिला रेगे (1995), 'द हेज़ेमोनिक ऐप्रोप्रिएशन ऑफ़ सेक्सुअलिटी : द केस ऑफ़ द लावनी परफ़ॉर्मर्स ऑफ़ महाराष्ट्र', *कॉन्ट्रीब्यूशंस टू इंडियन सोसियोलॅजी*, 29 : 1 और 2 : 23-38.

शेखर बंद्योपाध्याय (2004), *कास्ट, कल्चर ऐंड हेज़मनी : सोशल डोमिनेंस इन कोलोनियल बंगाल*, सेज़, दिल्ली.

शेखर बंद्योपाध्याय (2011), *कास्ट, प्रोटेस्ट ऐंड आयडेंटिटी इन कोलोनियल बंगाल : द नामशूद्रा 'ज़ ऑफ़ बंगाल, 1872-1947,*ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली.

संजय निगम (1990), 'डिस्पिलिनिंग ऐंड पुलिसिंग द 'क्रिमिनल बाईबर्थ', पार्ट-2 : द डिवलपमेंट ऑफ़ ए डिस्पिलिनरी सिस्टम, 1871-1900', द *इंडियन इकॉनॉमिक ऐंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू*, 27, 3 : 257.

सौरभ दुबे (1998), *अनटचैबल पास्ट : रिलीज़न, आयडेंटिटी ऐंड पॉवर एमंग ए सेंट्रल इंडियन कॉम्युनिटी, 1780-1950*, सनी प्रेस, अल्बनी.